कषाय : क्रोध तत्त्व

❑ प्रो. कल्याणमल लोढ़ा

क्रोध आत्मा के पतन का द्वार है। क्रोध से प्रेम, दया एवं करुणा की भावना विलुप्त हो जाती है। क्रोध बुद्धि को विकृत करनेवाला एवं मस्तिष्क को ताप देने वाला तत्व है। नरक गति में जाने के कारणों में एक कारण है – महाक्रोध। आत्म शांति को बाधित करनेवाला तत्व भी क्रोध ही है। क्रोध को उपसम भाव से जीते बिना साधक की साधना अपूर्ण है। क्रोध तत्व को जैन-जैनेत्तर धर्म ग्रंथों के आधार पर व्याख्यायित एवं विश्लेषित कर रहे हैं – हिन्दी जगत् के मूर्धन्य एवं ज्येष्ठ-श्रेष्ठ लेखक – प्रो. डॉ. कल्याणमलजी लोढ़ा। – सम्पादक

जैनधर्म में क्रोध एक कषाय है। चार कषायों में – क्रोध, मान, माया और लोभ में क्रोध की सर्वप्रथम गणना की गयी है। आस्रव के पांच द्वारों में कषाय चतुर्थ है। पांच द्वार हैं – मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। **"कषति इति कषायः"** – जो आत्मा को कसे और उसके गुणों का घात करे वह कषाय है। **"कर्षति इति कषायः"** – जो संसार रूपी कृषि को बढ़ाए / जन्म-मरण नाना दुःखों का वर्धन करे – जो आत्मा को बंधनों में जकड़ कर रखे, वही कषाय है। कषाय आत्मा का आंतरिक कालुष्य है। **"कषाय वेदनीयस्योदयादात्मनः कालुष्य क्रोधादि रूपमुत्पद्यमानं "कषायात्मात्मानं हिनस्ति"** यही कषाय है। कर्म के उदय से होने वाली कलुषता कषाय कहलाती है क्योंकि वह आत्मा के स्वाभाविक स्वरूप को कस देती है। क्रोध, मान, माया, लोभ के पथ में धंस कर जीव अपने स्वभाव से विस्मृत होकर त्रि-भाव (त्रिकृत भाव) में लिप्त हो जाता है, जहां केवल ऐषणाएं हैं – अनवरत अतृप्ति, स्पर्धा और भोग प्रवृत्ति के साथ अधिकार लिप्सा और आत्म प्रवंचना है। जीवन एक भूल भुलैया बन जाता है, जिसमें प्रवेश के द्वार तो अनेक हैं पर बाहर आने के मार्ग अत्यंत दुष्कर है। जैन धर्म (प्रत्येक नीति शास्त्र) इसी से कषायों की विकृति पर बल देता है। कलियुग का एक नाम कषाय भी है। गोम्मटसार में दो प्रकार से कषाय की उत्पत्ति बताई है – कर्म क्षेत्र का जो घर्षण करता है वह कषाय है। इससे संसार रूपी मर्यादा अत्यन्त दूर है। दूसरी उत्पत्ति 'कष्' धातु से है – जीव के शुभ परिणामों को जो "कषे" वह कषाय है। इस कषाय के अनेक भेद हैं। जैन धर्म व दर्शन में इनकी विशद व्याख्या की गयी है। उमास्वाति कहते हैं – **"शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्य"** (तत्त्वार्थ सूत्र) शुभ योग पुण्य है और अशुभ योग आस्रव के हेतु। पुण्य कर्म के आस्रव का हेतु शुद्धोपयोग है।

जैन धर्म में कषाय का विशद वर्णन आगमों व अन्य ग्रंथों में मिलता है। दशवैकालिक निर्युक्ति (१८६) में कहा है **"संसारस्स मूलं कम्मं, तस्स वि हुंति य कसाया"** – विश्व का मूल कर्म है और कर्म का मूल कषाय। एक अन्य स्थान पर कषाय रूप अग्नि जिससे प्रदीप्त होती है, उस कार्य को छोड़ देना चाहिए और कषाय को दमन करने वाले कार्यों को धारण करना अपेक्षित है। (गुणानुराग कुलक) कषाय दमन के लिए क्रोध मान, माया एवं लोभ का हनन; मृदुता, ऋजुता और सहिष्णुता से संभव है। यही नहीं सारी साधना और तपस्या को क्षण भर के कषाय नष्ट कर देते हैं (निशीथ भाष्य २७९३) कषाय ही आत्मा का शत्रु है। उत्तराध्ययन (२३ – ५३) में कहा है – कषाय रूपी अग्नि को ज्ञान, शील और तप के शीतल जल से बुझाया जा सकता है – **"कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय सीतल तवो जलं।"** कषाय असंयम को जन्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देता है। अन्तरात्मा के चार प्रमुख दोषों (क्रोध, मान, माया, लोभ) में क्रोध ही प्रथम और निकृष्ट है – क्रोध प्रेम का नाश कर – घृणा, द्वेष और वैर का कारण है, मान विनय का, माया मैत्री का और लोभ सर्वनाशक है (दशवैकालिक ८ – ३७)। आचाराङ्ग में बताया है – **वीरेहि एयं अभिभूयं दिट्ठं संजेतेहि सया जतेहि सया अप्प-मत्तेहिं** (४ – ६८)। वीर साधना के विघ्नों को निरस्त करते हैं – संयम से इन्द्रिय और मन का निग्रह, यमी होकर क्रोध का दमन और अप्रमत्त होकर सदा जागरूक रहते हैं। कषाय विरति के लिए सूत्र हैं **"से वंता कोहं च, माणं च, मायं च लोभं च'** – साधक क्रोध, मान, माया लोभ का परित्याग करे। पुनः क्रोध, मान, माया लोभ का प्रेरक वर्णन है (शीतोष्णीय ३)। इसी से **'दुक्खं लोभस्स जाणित्ता'**। संक्षेप में कषाय त्याग के लिए साधना, तप और एकाग्रता आवश्यक है "आंतरिक ज्ञान – प्रज्ञा से ही अप्रमादी और **"कोह दंसी"** बनना संभव है। आचार्य अमितगति ने –

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्"

आस्रव का हेतु कर्म है – पुण्य और पाप आस्रव के लिए कहा गया है – **"पुण्णस्सासव भूदा अणुकंपा सुद्धो उवजोओ"** – अनुकंपा और सद् प्रकृति से शुद्धोपयोग और पुण्य कर्मों का आस्रव होता है और चारों कषायों का क्षय। सुभाषित है **"प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूराद् स्पर्शनं वरम्"** – कीचड़ लगा कर धोने की अपेक्षा, न लगाना ही उत्तम और अपेक्षित है। आचार्य हस्ति ने (अध्यात्म आलोक पृ. १८६ में) पूर्वाचार्यों के कथन का उल्लेख किया है –

मंज्जं विसय कसाया, निद्दा विकहा य पंचमी भणिया
एए पंच पमाया जीवा पाडंति संसारे"

★ ★ ★

"प्रकर्षेण मादयति जीवं येन स प्रमादः" –

प्रमाद में मनुष्य विवेकहीन हो जाता है – करणीय अकरणीय का ध्यान नहीं रहता और आत्मा के स्वरूप की हिंसा करता है। वेदनीय कर्म के उदय से होने वाली क्रोधिता रूप कलुषता कषाय है – वह हिंसा करती है। मिथ्यात्व सबसे बड़ा कषाय है।

जिन जीवों के कषाय नष्ट हो चुके हैं, जो वीतरागी है उनकी सभी क्रियाएं ऐर्यापिथिकी हैं और जो क्रियाएं सांसारिक बन्धन को और कसती हैं, वे **साम्परायिकास्रव** हैं। तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार **"सकषाया-कषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः** (६ – ५)। कषाय चारित्रिक मोहनीय कर्म बंध के हेतु हैं – वे आत्मा को उद्वेलित करते हैं। चारित्र मोहनीय कर्म के दो भेद हैं – कषाय और नोकषाय। इनके भी अनेक भेद – प्रभेद हैं। उत्तराध्ययन के अनुसार कषाय के प्रत्याख्यान से वीतराग भाव उत्पन्न होता है और जीव सुख-दुःख में सम हो जाता है (२६ – ३७) कषाय के लिए कहा गया है –

होदि कसाउम्मतो उम्मतो तध ण पित्त उम्मत्तो।
ण कुणदि पित्तुम्मत्तो पावं इदरो जधुम्मतो।

(भगवती आराधना १३३१)

कषाय से उन्मत्त व्यक्ति पित्त से उन्मत्त व्यक्ति से भी अधिक तीव्र होता है – **क्रोध पित्त निज छाती जारा** तुलसीदास पुनः कहते हैं: –

काम क्रोध मद लोभ न जाके।
तात निरन्तर वश में ताके।

जिस प्रकार नाव के छिद्र को रोक देने से नाव डूब नहीं सकती उसी प्रकार कषायों के अवरूद्ध होने से सभी आश्रव अवरुद्ध हो जाते हैं। कषाय पुनर्जन्म वृक्ष की जड़ों को सींचते हैं –

"चत्तारि ए ए कसिणा कसाया
सिचंति मूलाई पुण भवस्स" (द – ८ – ३६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध कषाय में सर्वप्रथम है। सूत्रकृतांग (१ – ६ – २६) में क्रोध को कषायों में प्रमुख कहकर अन्तरात्मा का महान् दोष गिना है – इसके परित्याग से महर्षि न पाप करते हैं और न कराते हैं। स्थानाङ्ग (४ – २) कहता है – क्रोध आत्मा को नरक में ले जाता है। स्वयं पर भी क्रोध न करने का आदेश वीर प्रभु ने दिया है (उत्तराध्ययन २४ – ६७)। क्रोध से प्रेम, दया व करुणा नष्ट होते हैं। इसी से वज्जालग के मत में **"कोह समो वेरियो नत्थि"** क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है। क्रोध में व्यक्ति माता-पिता-गुरु का भी बध कर देता है – **क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्यात् गुरुनपि" "सान्तात्मसे पृथग्भूतः** क्षमा रहित मात्र क्रोध है। "क्रोध" **"सान्तात्मतःपृथग्भूतः एका अक्षमा रूपो भावः क्रोधः"**। अन्यत्र **"प्रतिकूले सति तैक्ष्ण्यस्य प्रबोधः"**। एक अन्य परिभाषा के अनुसार **"स्वपरोपघात निरनुग्रहाहितकार्य परिणामो अमर्षः क्रोधः"** अपने या पर के उपघात या अनुपकार आदि करने का क्रूर परिणाम क्रोध है। 'द्रव्य संग्रह टीका' में उसे **"अभ्यन्तरे परगोपशम मूर्ति केवलज्ञाना द्वयनत गुण स्वभाव परमात्म स्वरूप क्षोभ कारकाः। बहिर्विषये परेणां संबन्धित्वेन क्रूरत्वाद्या वेश मूर्ति केवलज्ञानादि"** अनन्त गुण-स्वभाव परमात्म रूप में क्षोभ उत्पन्न करने वाले तथा बाह्य विषयों अन्य पदार्थों के संबंध से क्रूरता आवेशरूप क्रोध है। 'साहित्य दर्पण' में विश्वनाथ कविराज ने इसे रौद्ररस का स्थायी भाव मान कर कहा है –

अनुभावस्तथाक्षेप क्रूर संदर्शनादयः
उग्रतावेग-रोमाञ्चस्वेद-वेपथवो मदः।
मोहामर्षादयस्तत्र भावास्युर्व्यभिचारिणः।।

'भाव प्रकाश' में क्रोध का स्वरूप है –

तेजसो जनकः क्रोधः समिधः कथमतेसुधेः
क्रोधः कोपश्च रोषश्चेत्येष भेदास्त्रिधा मतः
कृत क्रौर्यं तेन सर्वत्र धचयतीत्यस्त निर्बहः
क्रोध्यते क्रोधयत्येवं क्रोध इत्यभिधीयते।

प्रसिद्ध आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने इसे शान्ति भंग करने वाला मनोविकार गिनते हुए वैर को क्रोध का अचार या मुरब्बा गिना है। इस प्रकार क्रोध की परिपक्वावस्था रौद्र, क्रूरता, वैर का हेतु है। क्रोध के पर्याय हैं – कोप, अमर्ष, रोष, प्रतिघ, रूट, कुत, भीम, रूपा, हेल, हर हृणि, तपुषी, मृत्यु, चूर्णि, एह आदि। क्रोध एक वत्सर भी है, जिसके आने पर सकल जगत् आकुल हो जाता है एवम् प्राणियों में क्रोध भाव की बहुलता रहती है। यह रजोगुणात्मक और तमोगुणात्मक है। हलायुध कोश में इसके पर्याय कोप, अमर्ष, रोष, प्रतिघ, रुद्र, कृत, कृद दिए हैं। **प्रतिकूलेसति तैक्ष्ण्यस्य प्रबोधः**। अपने और अपघात अथवा अनुपकार आदि करने का क्रूर परिणाम क्रोध है। वह पर्वत रेखा, पृथ्वी रेखा, धूलि रेखा और जल रेखा के सदृश चार प्रकार का होता है (राजवार्तिक) पौराणिक मान्यता के अनुसार इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के भू से हुई है। क्रोध का अनुभाव समस्त शरीर में कम्पन, रक्त कमल के सदृश दोनों नेत्रों का आरक्त होना, भ्रमंग से भी भयंकर आकृति।

क्रोधेनेदुत धृत कुन्तल भटः सर्वाङ्ग जोवे पशुः।
किञ्चित् कोकनदस्य सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः।।
वत्ते कान्तिमिदे न वक्त्रमन्यो भंगड़ेन भिन्नं भृवोः।
चन्द्रोस्यद्म्टलानछनस्य कमलस्योम्द्रान्त भृंगस्य च।।
(उत्तरराम चरित (५ – ३६)

जैन मान्यता के अनुसार भी क्रोध में हृदय दाह, अंग कम्प, नेत्र रक्तता और इन्द्रियों की अपटुता उसके प्रभाव हैं। भौंह चढ़ाने के कारण जिसके ललाट में तीन बली पड़ती है, शरीर में संताप होता है, कांपने लगता है – वह क्रोध सब अनर्थ की जड़ है। आधुनिक मनोविज्ञान में जेम्स लेज का सिद्धान्त भी क्रोध के इन अनुभावों का समर्थन करता है।

भारतीय चिन्तन धारा में क्रोध पर विशेष विचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है। शायद ही कोई ऐसा आप्त ग्रन्थ हो, जिसने इस मनोविकार या कषाय की विवेचना नहीं की। अनेक काव्य ग्रंथों में क्रोध की मीमांसा की गयी है। जैन धर्म व तत्त्व चिन्तन में तो कषाय में सर्वप्रथम इसे परिगणित किया है। इस पर विचार करने के पूर्व हम भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध क्रोध संबंधी कुछ अभिमत देखें। काम के सदृश ही क्रोध से पराभूत होने पर विवेक और समय नष्ट हो जाता है। वह भी नरक का एक द्वार है। वाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट उल्लेख है –

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद् गुरुनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत्।।
वाच्या वाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विधतेक्वचित्।।

(सुन्दर काण्ड – ५५-३-४)

क्रोध से भर जाने पर कौन पाप नहीं करता, मनुष्य गुरुजनों की भी हत्या कर सकता है। क्रोधी साधु पुरुषों पर भी कटुवचनों द्वारा आक्षेप करता है। क्रोध से व्यक्ति अंधा और बहरा होता है – उसकी चेतना शक्ति नष्ट हो जाती है और वह कर्तव्यहीन होता है। ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध षष्टि संवत्सरों में क्रोध एक संवत्सर है जिसमें सकल जगत आकुल- व्याकुल होकर प्राणियों में क्रोध की अतिशयता आती है। (वेदान्त सार)। 'शब्दार्थ चिन्तामणि' में कहा है – इस संवत्सर में

"विषमस्य जगतः सर्वं व्याकुलं समुदाहृतम्।
जनानां जायते भद्रे क्रोधे क्रोधः परः स्थिरम्'।

महाभारत में **"क्रोधा प्राधान्य विश्वा च विनतो कपिलो मुनिः** क्रोध सबसे घातक शत्रु है – **क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम"** क्रोध मुनियों और यतियों के संचित पुण्य व साधना का क्षरण कर लेता है। क्रोधालू व्यक्ति धर्मविहीन होते हैं – उन्हें अभीष्ट गति प्राप्त नहीं होती।

क्रोधो हि धर्मं हरति यतीनां दुःख संचितम्।
ततो धर्म विहीनानां गतिरिष्टा न वियते।

(महाभारत – आदि पर्व ४-२-८)

श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण का स्पष्ट कथन है – **"काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः"** रजोगुण क्रियाशील है – इसी से रजोगुण समुद्भव कहा है। काम और क्रोध में अधिक अंतर नहीं – **यः कामः स क्रोधः य क्रोधः स कामः"**। आधुनिक मनोविज्ञान भी इस मत का अनुमोदन करता है। क्रोध को महापाप कहा है, क्योंकि क्रोध में ज्ञान आवृत्त होता है और व्यक्ति विवेक और संयमहीन हो जाता है। श्रीगीता में पुनः श्री कृष्ण कहते हैं – **संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते** – काम से क्रोध और **क्रोधाद्भवति संमोहः** – तत्पश्चात् स्मृति विभ्रम और बुद्धि-नाश"। इस प्रकार क्रोध को वर्जनीय गिना है। श्री कृष्ण पुनः कहते हैं – काम क्रोध से रहित शुद्ध चित्त वाले ज्ञानी पुरुषों के लिए सब ओर से शांत परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है। (५-२६)। आगे (१६-२) में भी कहा है – काम, क्रोध और लोभ ये तीन ही नरक के द्वार हैं और आत्मा का नाश करके अधोगति में ले जाते हैं – इन तीनों का त्याग आवश्यक है –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।

क्रोध के दो स्तर हैं – शांत (साइलेन्ट) और आक्रामक (वाईलेन्ट)। पहला क्रोध शांत होता है जिससे व्यक्ति हताश, निराश व अवसादग्रस्त हो जाता है। आक्रामक क्रोध बहिर्मुखी होता है – जिससे व्यक्तित्व खंडित होता है और मानसिक एवं ग्रंथि तंत्रीय विषैले सुख व्यक्ति को अस्वस्थ करते हैं। क्रोध से थाइरॉड ग्लांड (कंठ मणि) का स्राव बंद हो जाता है जिससे विनाश की प्रवृत्ति बढ़ती है। इसी से कहा है –

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधोऽमित मुखी रिपुः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोधः असि समुहातीक्ष्ण तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत्।।

क्रोध के समय शरीर की आक्रामक ग्रंथियां अधिक सक्रिय होकर शरीर और भाव तंत्र को विकृत करती है। ब्रेन हेमरेज का भी एक कारण क्रोध है। जैन आगमों में क्रोध को अल्पायु का एक कारण गिना है। भगवान् महावीर का निर्देश है – **उवसमेण हणे कोहं**" उपशम क्रोध का हनन करता है। जीवन में क्षमता, समता और स्थिरता, ऋजुता आवश्यक है। क्रोध एक भाव तरंग है जो मस्तिष्क का भावावेश (इमोशनल एरिया) से उत्पन्न होकर, एड्रीनल ग्लांड (अधिवृक्क ग्रंथि) को उत्तेजित करता है, जिससे मनुष्य अपना मानसिक व शारीरिक संतुलन खो बैठता है। और विष तरंगों का प्रभाव बढ़ता है। क्षमता, समता, स्थिरता और ऋजुता ही संतुलन देते हैं। महर्षि व्यास के अनुसार क्रोध न करने वाला व्यक्ति सौ वर्ष तक यज्ञ करने वाले से भी श्रेष्ठ है।

यो यजुद परिश्रान्तो मासि मासि शतं सभा।
क्रुध्येच्च सर्वस्य.... तयोरक्रोधनोऽधिकः।

वन पर्व (२०६-३२) में व्यास का कथन है –

बलाका हि त्वया दग्धा शेषात्तदधिगतं मया।
क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम।।

तुमने क्रोध कर के एक बगुली को जला दिया। यह मुझे ज्ञात हो गया। क्रोध नामक शत्रु मनुष्य के शरीर में ही रहता है। अन्यत्र नहीं, जो उसे जीत लेता है, वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। लोक मर्यादा, व्यक्ति हित, दोनों दृष्टियों से क्रोध गर्हणीय है। महाभारत में अनेक स्थलों पर महर्षि व्यास ने क्रोध को महाशत्रु गिना है – यथा आदि पर्व – ७६-६, ४२-३ वन पर्व २०७-३२)। अनेक पुराणों में क्रोध को अभिशाप गिना है। पद्म पुराण में नन्दा गाय अपनी पुत्री को कभी प्रमाद न करने का उपदेश देती है। लोभ से किसी घास को मत चरना। लोभ व प्रमाद सद्गुणों का नाश कर देते हैं। गरुड़ पुराण में नरकों का वर्णन करते समय कहा गया है कि व्यक्ति को पाप का फल भोगना पड़ता है। यह पुराण मनुष्य को असत् कर्म से हटा कर सत् कर्म के लिए प्रवृत्त करता है – अशुभ कर्म से पाप फल प्राप्त होते हैं। वामन पुराण (२८-७) में कहा है कि क्रोधी लोक में यज्ञ, दान, तप, हवन आदि सभी क्रियाओं का फल प्राप्त नहीं करता – उसके शुभ कर्म निष्फल होते हैं। अक्रोधी शांत एवं उन्नति चाहता है – उसकी वाणी में माधुर्य होता है – दुर्वचन क्रोध का परिणाम है जिसका घाव कभी नहीं भरता। सत्य, अहिंसा और प्रेम मानवीय गुण है। विष्णु पुराण (१-१-१७-२०) में वसिष्ठ का कथन है –

"मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः"

* * *

संचितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः।
यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः।।
स्वर्गापवर्ग व्यासेधकारणं परमर्षयः
वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव।

पुनः साधुओं का बल केवल क्षमा है। यही पुराण आगे कहता है कि वैर भाव रहते हुए भी तुमने क्षमा का आश्रय लिया है और क्रुद्ध होने पर भी सन्तान का वध नहीं किया। तुम वर के अधिकारी हो (वही-२५)। इसी पुराण में प्रहलाद ने अपरिमेय क्षमा का उदाहरण देकर मृत ब्राह्मणों को पुनः जीवित करा दिया। मत्स्य पुराण में तप, दान, शम, आर्जव, सरलता, दया को सर्वोत्तम गुण गिने हैं। पुराणों के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में भी क्रोध को हेय बताया है। नीति शास्त्रों में भी क्रोध को अग्नि कहा है। चाणक्य नीति कहती है कि काम के समान कोई रोग नहीं, मोह के समान शत्रु और क्रोध के समान कोई आग नहीं। क्रोधी नरक में जाता है। क्रोध यमराज की मूर्ति है। विद्यार्थी को कामवासना के साथ क्रोध का त्यागने का भी चाणक्य ने आदेश दिया है। शुक्रनीति में भी छः दोषों में से क्रोध को एक दोष गिना है – इसी में मनुष्य का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकल्याण है। क्रोध मुनियों के गुण को भी समाप्त कर देता है। मनुस्मृति में क्षमा को दस लक्षणों में परिगणित किया है और विद्वान् की शुद्धि का कारण क्षमा बताया है। व्यवहार में मनु ने क्रुद्ध के प्रति भी क्रोध न करने का आचरण की पवित्रता बतायी है। विदुरनीति में विदुर कहते हैं:

अव्याधिजं कटुकं शीर्ष रोगं,
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
एता पेयं यन्न पिबन्त्य सन्तो,
मन्युं महाराजमिव प्रशाम्य।।

क्रोध बिना व्याधि के उत्पन्न होने वाला, बुद्धि को विकृत करने वाला, कठोर, कुकर्मों की ओर ले जाने वाला, ताप देने वाला होता है। पुनः **"कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः"** – काम व क्रोध ज्ञान को नष्ट कर देते हैं। विदुर पुनः कहते हैं। क्रोध, लक्ष्मी और अहंकार सर्वस्व का नाश करते हैं। अपना कल्याण चाहने वाला व्यक्ति सर्वप्रथम क्रोध पर विजय पाता है। पंडित वह है जो क्रोध को आत्मबोध और जीवन के उद्देश्य में बाधा नहीं पहुँचाता। इसलिए धैर्य पूर्वक काम – क्रोध रूपी मगरमच्छों से पूर्ण संसार रूपी नदी को पार करना है। भर्तृहरि ने नीति शतक (२१) में कहा है – **"क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोस्ति चेद्देहिनां"** अर्थात् क्षमा को कवच की आवश्यकता नहीं और क्रोधी को शत्रुओं की, क्योंकि उसके तो अनेक शत्रु होंगे ही। क्रोध मानव संहार का कारण है। इसी से कहा है – **"जहां क्रोध तहं काल है"**। **"क्रोधो वैवस्वतो राजा"**। क्रोध यमराज है। पुनः धीर पुरुषों के लक्षण में बताया है जिसका चित्त क्रोध रूपी अग्नि से ज्वलित नहीं होता – वही धीर है – **"चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः"**। बौद्ध धर्म में भी क्रोध का पूर्ण निषेध गौतम बुद्ध ने किया है। धम्म पद में "क्रोध वग्गो" के अंतर्गत उन्होंने कहा –

क्रोधं जहे विप्प जहेच्यं मानं संयोजनं सव्वमत्तिक्कमेय्यी
तं नाम रूपस्मिं असज्ज मानं अकिंचनं ना नुपतत्ति दुक्खा
(२२१)

व्यक्ति को क्रोध, अभिमान का पूर्ण त्याग करना चाहिए। नाम रूप से निरस्त आसक्ति का त्याग करने से दुःख का निरोध होता है। वे पुनः कहते हैं – **"अक्कोधेन जिने कोधं"**, क्रोध का निरोध करो। उनका स्पष्ट कथन है – **"यो वे उप्पतितं कोधं रथ भन्त वधारये"** क्रोध को विजय करने वाला उस सारथी के समान है जो अपने रथ को नियन्त्रण में रखता है। यही नहीं उन्होंने वाणी के संयम, शब्दों के नियन्त्रण, असत्य भाषण, को भी त्यागने को कहा है – **"वचीय कोपं रक्खेय्य वाचाय संवितोसिया"** (२३२) ऐसे ही मनुष्य सर्वदा अपने को सर्वभावेन नियन्त्रण में रखते हैं। बुद्ध मत के विज्ञानवाद में क्रोध को उपक्लेश गिना है – मूल क्लेश नहीं। क्लेश रागादि से असंप्रयुक्त अविद्या मात्र है (**बौद्ध धर्म-दर्शन पृ. ३३६**) क्रोध की परिभाषा इस प्रकार है **"व्यापाद हिंसा से अन्य सत्व – असत्व का आघात" है।**

संस्कृत के कवियों ने अपने महाकाव्यों में यथा अवसर क्रोध और क्रोधी की भर्त्सना की है। किरातार्जुनीय में कहा है –

अवन्ध्य कोपस्य विहन्तुरापदो भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुः मान न जातहार्देन न विद्विषादरः।।
(२-३३)

उत्तररामचरित में भवभूति का भी यही मत है। उत्साह वीर पुरुष का भूषण है पर क्रोध के अभिभूत हो कर्तव्यच्युत होकर वह कदाचार करना प्रारंभ कर देता है। प्रलाप में उसके कथन में न संगति रहती है और न औचित्य। क्रोध रूपी अज्ञान को नष्ट करना सर्वाधिक आवश्यक है। जैन धर्म में तो क्रोध को प्रथम कषाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिना है। वीर प्रभु ने सर्वदा और सर्वथा क्रोध के शमन पर बल दिया है।

तम्हा अतिविज्जो नो
तम्हा अतिविज्ञो नो पडिसंजलिज्जासि त्ति बेमि।

विद्वान् पुरुष क्रोध से आत्मा को संज्वलित न करें। भगवान् महावीर का आदेश है –

अकहो होइ चरे भिक्खुं , न तेसिं पडिसंजले।
सरिसो होइ बालाणं तम्हा भिक्खु न संजले।।

यदि कोई भिक्षु को अपशब्द कहे तो भी वह क्रोध न करे। क्रोधालु व्यक्ति अज्ञानी होता है। आक्रोश में भी संज्वलित न हो। **"रखेज्ज कोहं"** क्रोध से अपनी रक्षा करे – यही धर्म श्रद्धा मार्ग है। देवेन्द्र नमिराजर्षि से कहते हैं – **"अहो ते निज्झिओ कोहो"** आश्चर्य है कि तुमने क्रोध को जीत लिया।

"प्रवचन माता" में भाषा समिति में भी कहा है।

कोहे माणे य मायाए लोभे य उवउत्तया
हासे भए मोहरिए विकहासु तहेव य।
(उत्तराध्ययन २४-६)

क्रोध विजय से जीव शांति को प्राप्त होता है। क्रोध-विजय वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं करता। क्रोधादि परिणाम आत्मा को कुगति में ले जाते हैं। क्रोध चार प्रकार का होता है – अनन्तानुबन्धी (अनन्त) अप्रत्याख्यानावरण (कषाय विरति से अवरोध के कारण) प्रत्याख्यानावरण (सर्व विरति का अवरोध करने वाला) और संज्वलन (पूर्ण चरित्र का अवरोध करने वाला) यह भी कहा है – **"क्रोधः कोपश्च रोषश्च एष भेदस्त्रिधा मतः"**। ठाणांग में पुनः –

चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा –
आभोगणिव्वत्तिते,
अणाऽभोगणिव्वत्तिते
उवसंते, अणुवसंते
एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चार प्रकार का – **आभोग निवर्तित** – स्थिति को जानने वाला, **अनाभोग निवर्तित** – स्थिति को न जानने पर, **उपशान्त** (क्रोध की अनुदयावस्था) **अनुपशान्त** (क्रोध की उदयावस्था) (४-८८)।

क्रोध १८ दोषों में तृतीय दोष है – सांसारिक वासना का अभाव कषाय का क्षय करता है – केशीकुमार के प्रश्न पर गणधर गौतम कहते हैं – **"कसाय अग्गिणो वुत्ता सुय-सील-तवो जलं"** क्रोध रूपी कषाय अग्नि को बुझाने की श्रुत, शील, तप रूपी जल है। यही नहीं प्रभु तो यहां तक कहते हैं कि क्रोधी को शिक्षा प्राप्त नहीं होती। चौदह प्रकार से आचरण करने वाला संयत मुनि भी अविनीत है – यदि वह बार-बार क्रोध करता है, और लम्बी अवधि तक उसे बनाए रखता है। महावीर स्वामी कहते हैं कि क्रोध विजय से जीव शान्ति प्राप्त करता है। क्रोध मनुष्य के पारस्परिक प्रेम और सौमनस्य को समाप्त करता है – **कोहो पीइं पणासेइ** (वह आत्मस्थ दोष है – वैर का मूल, घृणा का उपधान"। क्रोध के अनेक कारणों का भी आगमों में उल्लेख है। उसकी उत्पत्ति क्षेत्र, शरीर, वास्तु और उपधि से होती है – क्षेत्र अधर्मतृ भूमि की अपवित्रता, शरीर अर्थात् कुरूप, अंग-दोष, वास्तु गृह से और उपधि का अर्थ है उपकरणों के नष्ट होने से। अन्य प्रकार से उसके दस हेतु हैं – मनोज्ञ का अपहरण, उसके अतीत व वर्तमान और भविष्य की आशंका। आचार्य और उपाध्याय से मिथ्यावर्तन का भय आदि। (ठाणं) भगवान् बुद्ध ने तीन प्रकार के मनुष्यों का उल्लेख किया है – एक वे हैं, जिनका क्रोध प्रस्तर पर उत्कीर्ण रेखा की भांति दीर्घ काल तक रहता है। दूसरे वे हैं, जिनका क्रोध पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान अल्पकालीन होता है और तृतीय प्रकार के वे हैं जिनका क्रोध जल पर खिंची रेखा के सदृश होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है – वह अपनी प्रसन्नता नहीं खोता, समभाव रखता है – इस प्रकार – **"यद् ध्यायति तद् भवति"** – (अंगुत्तर निकाय भाग १)

भगवान् महावीर ने क्रोध कषाय का वर्णन ही नहीं किया वरन् उसके उपशमन की भी विधि बतायी है। हम आगे देखेंगे कि आधुनिक मनोविज्ञान की अवधारणाओं से क्रोध का यह निरूपण और उपचार मिलता-जुलता है। महावीर कहते हैं –

कोहादि सगब्भावक्खय पहुदि भावणाए णिग्गहणं
पायच्छित्तं म मणिदं णियगुणचिन्ता य णिच्छयदो।

क्रोध आदि भावों के उपशमन की भावना करना तथा निज गुणों का चिन्तन करना निश्चय से प्रायश्चित तप है, इसे ही आधुनिक मनोविज्ञान में अन्तर्निरीक्षण (इन्ट्रोइंस्पेकक्शन) कहा है – "अन्तर्निरीक्षण व्यक्ति के मानसिक उद्वेग व असंतुलन को नष्ट कर देता है – यदि क्रोधित व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण करे तो उसका आवेश – उद्वेग शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा और वह पुनः स्वस्थ होगा। आत्म चिन्तन के साथ – साथ शील और सत्य भावना भी क्रोध का क्षय करती है। दशवैकालिक (८-३८) के अनुसार **"उवसमेण हणे कोहं"** – क्रोध का हनन शान्ति से होता है। संयम और विनय से शुभ भावनाओं के द्वारा व्यक्ति क्रोध के मनोविका से मुक्त होता है। **(दृष्टव्य – भगवती आराधना – १४०६-७-८)**। इसी प्रकार तप, ज्ञान, विनय और इन्द्रिय दमन क्रोध के उपशमन के साधन हैं। भाषा समिति के अंतर्गत कहा गया है कि क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, वाचालता व विकथा के प्रति सतत उपयोगयुक्त रहना अभीष्ट है। इसी प्रकार वही प्रशान्तचित्त है, जिसने क्रोध को अत्यन्त/अल्प किया है। महावीर स्वामी कहते हैं, क्रोध पर ही क्रोध करो, क्रोध के अतिरिक्त और किसी पर क्रोध मत करो। क्रोध के शमन के लिए अध्यात्म और स्वाध्याय आवश्यक है। अपने चित्त को अन्तर्मुखी कर शास्त्र का अवलम्बन ले अन्तःकरण शुद्ध करना क्रोध पर विजय पाना है। आचार्य हरिभद्र कहते हैं :

मलिनस्य यथात्यन्तं जलं वस्त्रस्य शोधनम्।
अन्तःकरणरत्नस्य तथा शास्त्रं विदुर्बुधाः।।

जिस प्रकार जल वस्त्र की कलुषता नष्ट कर देता है उसी प्रकार शास्त्र भी मनुष्य के अन्तःकरण में स्थित काम-क्रोधादि कालुष्य का प्रक्षालन करता है। क्रोध का हनन क्षमा होता है।

उत्तराध्ययन (२६-४७) में क्षमा को परीषहों पर विजय प्राप्त करने वाली कहा है – इससे मानसिक शांति व संतोष प्राप्त होता है। वज्ञालग (५-५) में कहा है कि कुल से शील, रोग से दारिद्र्य, राज्य से विद्या और बड़े से बड़े तप से क्षमा श्रेष्ठ है। क्षमाशील वह है – जो घोर से घोर उपसर्ग में भी क्रोध न करे / वही क्षमाशील है / वही समस्त पाप कर्मों के बन्ध से मुक्त होता है। इसी से कल्प सूत्र (३ – ५६) में कहा है – **"खमियव्वं खमावियव्वं"** क्षमा मांगनी चाहिए, क्षमा देनी चाहिए। जैन धर्म का सर्वश्रेष्ठ पर्व पर्युषण जहां साधना और तप का पर्व है, वहां वह क्षमा का भी पर्व है। श्रमण व श्रावक समस्त जीवों से क्षमा मांगते हैं। जाने-अनजाने, ज्ञात-अज्ञात किसी भी क्षण यदि प्रमाद हुआ हो तो सभी जीव क्षमा करे –

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ति मे सव्व भुएसु वेरं मज्झ न केणई।।

(वंदितु सूत्र ४८)

सभी जीवों से मेरा मैत्री भाव है, वैर – विरोध कदापि नहीं। इसी प्रकार बौद्ध धर्म में भी गौतम बुद्ध ने क्षमा का महत्व अनेक गाथाओं में प्रतिपादित किया है। **"न हि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कदाचनं।"** – वैर से वैर कभी समाप्त नहीं होता। बुद्ध कहते हैं – उसने मुझे दुत्कारा, अपशब्द कहे, लूटा, त्रास दी – इन सबको सोचने वाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमारहित होकर कभी शांति नहीं पा सकता (यमक वग्गो – ३-४)। ललितविस्तर (४-१-१६) में कहा है **"क्षान्त्या सौरभ्य सम्पन्ना"** – क्षमा की सुगन्ध से, सुरभि से सुगन्धित हो। बुद्ध कहते हैं जब कोई व्यक्ति अत्यधिक क्रोध की स्थिति में हो और यदि वह अभिज्ञ है कि वह क्रुद्ध हो तो उसी क्षण उसका क्रोध समाप्त हो जाता है। समस्त कषायों के लिए अभिज्ञ होना उनको दूर करना है। बुद्ध का ध्येय है **'महात्याग शील व्रत शान्ति वीयं वलां'**, अर्थात् शील, क्षमा, तेज, बल और दान से भव सागर पार करना है। बौद्ध धर्म का मैत्री व करुणा मुदिता का सिद्धान्त भी परोक्ष रूप में क्षमा है, जिससे अमृत रस का पान होता है। शांतिदेव कारिका में कहते हैं – **"क्षमेत श्रुतमेषेत संप्रयते वनं तत्"** इसकी व्याख्या में कहा गया है कि शांति से बड़ा कोई तप नहीं है – द्वेष सहस्त्रों कामों के शुभ कर्म को नष्ट करता है। श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव, आकार परिवितकं, दृष्टि विधान-शांति – ये पांच धर्म इसी जन्म के विपाक वाले हैं।

भारतीय वाङ्मय में क्षमा को समस्त दुष्कर्मों के प्रतिहार के साथ – साथ क्रोध के पाप कर्म से मुक्ति माना गया है। महाभारत में **(अनुशासन पर्व २३-८६ में)** व्यास कहते हैं – **"क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः"** जो क्षमा के सदाचार से युक्त हैं वे स्वर्ग को जाते हैं। सुभाषित हैं – **"अक्रोधस्तेजः – क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता"** – क्षमा प्रभुता का भूषण है। भर्तृहरि ब्राह्मण का गुण बताते हुए कहते हैं **"शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणस्य गुणः स्मृतः।"** **क्षमा वीरस्य भूषणम्** – यह तो प्रसिद्ध ही है। इस संबंध में विष्णु पुराण (१-१८-४२) में प्रह्लाद कहता है कि जो मुझे मारने को आए, विष दिया, आग में जलाया, दिग्गजों से पीड़ित किया, सर्पों से डंसाया, उन सबके प्रति मैं समान मित्र भाव से रहा हूँ और कभी पाप बुद्धि नहीं हुई हो तो ये सब पुरोहित जी उठे।

श्री कृष्ण ने गीता में जिन देवी सम्पदाओं का वर्णन किया है उनमें अनुद्वेग, प्रिय और हितकारक वचन वाणी तप कहा गया है – **अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।"** यही सदाचार है और क्षमा का स्वरूप है। यजुर्वेद (३६ – १८) में ऋचा है –

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहि।

विश्व मैत्री की इस प्रार्थना का मूल अक्रोध, अद्वेष के साथ सर्वत्र शांति, सर्वव्यापी प्रेम और क्षमा है। **विदुर नीति** में कहा है कि क्षमा ही शांति का श्रेष्ठ उपाय है – **क्षमैका शान्तिरुत्तमा"**। विदुर पुनः कहते हैं 'क्षमा सब के लिए हितकारी है – **क्षमेत शक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।**

अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता। (७-५८)

तितिक्षा और क्षमा में परस्पर संबंध है। तितिक्षा का एक अर्थ क्षमा भी है। आचार्य हस्ति ने **(उत्तराध्ययन भाग-२ पृष्ठ २५७ में)** शान्ति के दो अर्थ लिए हैं – क्षमा और सहिष्णुता। सहिष्णुता और तितिक्षा होने पर व्यक्ति की सहन शक्ति बढ़ जाती है और वह परीषहों पर विजय पा लेता है। इस प्रकार के श्रमण धर्म में शान्ति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव हैं। शान्ति अर्थात् **क्षमुष् सहने; क्षम्यते सह्यते इति क्षान्तिः"**। अन्यत्र कहा है –

"क्षान्त्या क्षमया क्षमते न त्वसमर्थतया
यः सः शान्तिः क्षमः। (कल्प सूत्र-४-५)
इहादौ वचनं शान्तिः धर्मः क्षान्तिरनंन्तरम्।
अनुष्ठानं वचनानुष्ठानात्स्याद् संगतम्।।
उपकारापकाराभ्यां विमोकाद्वचनात्तया।
धर्माच्च समये शान्तिः पंचधा हि प्रकीर्तिता।।

(अभिधान राजेन्द्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहिष्णुता तितिक्षा का लक्षण है "**तितिक्षा.... शीतोष्णादि द्वन्द्व सहिष्णुता** यह भी कहा गया है – **सहनं सर्वदुःखानां...तितिक्षा निगद्यते**। क्षमावान् अभय रहता है। योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं – **क्षमा धृति मिताहार ...क्षमा सेवेति**। गीता में (१२ – १३ में) श्री कृष्ण कहते हैं –

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।
ऐसा मनुष्य ही *"स मे प्रियः"।*

हिंदुओं में पितृतर्पण के उपलक्ष्य में पूर्व जन्म के शत्रुओं को भी जलदान देना क्षमा – साधना की पराकाष्ठा है "**ये बान्धवाऽबान्धवा ते तृप्ति मखिलां यान्तु**"। (द्रष्टव्य विष्णु पुराण – ४-१०-२५७)।

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्।
सम दृष्टेस्तदा पुंसः सर्वास्सुखमया दिशः।।

अर्थात् जो किसी भी प्राणी के प्रति पापमयी भावना नहीं रखता, उस समय उस समदर्शी के लिए सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं। (पुनः वाल्मीकि सुन्दर कांड ५५) हनुमान कहते हैं – **धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्धया कोप-मुत्थितम्**। वस्तुतः जो हृदय में उत्पन्न क्रोध को क्षमा के द्वारा निकाल देता है जैसे सांप पुरानी केंचुल को; वही वास्तव में पुरुष है –

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमां चैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते।।

क्षमा ही क्रोध का उपचार है :

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं च उज्जुभावेण, लोभं संतोसओ जिणे।।

क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आर्जव से और लोभ को संतोष से जीता जाता है। उत्तम क्षमा धर्म के दस लक्षणों में प्रथम है – "**उत्तमखममदवज्ञव**"। भयंकर से भयंकर उपसर्ग पर भी जो क्रोध नहीं करता है, वही "**तस्स खमा णिम्मला होदि**"। जैन धर्मावलम्बियों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे समस्त जीवों से क्षमा याचना करें और उन्हें क्षमा भी करें। सभी प्राणियों के प्रति समभाव का यह प्रथम उपकरण है, जिसमें किसी से भी वैर भाव नहीं। यह संकल्प वस्तुतः क्षमा, मैत्री और अप्रमाद का ही संकल्प है (क्रोध का कारण द्वेष है – "**दोसे दुविहे पण्णत्ते तं जहा-कोहे य माणे य**"। द्वेष समाप्त करो, क्रोध स्वतः नष्ट हो जाएगा। (ठाणं-२-३-२) शान्तसुधारस में भी "**क्रोध क्षान्त्या मार्दव नाभिमान**" कहा है। क्षमा मनुष्य का भूषण है। क्षमा मानसिक शांति का महत् और अचूक अस्त्र है। सभी तत्व चिन्तकों ने क्षमा को मनुष्य की अप्रतिम शक्ति माना है। "**क्षमते आत्मोपरिस्थिता जीवानाम् अपराध या**"। पृथ्वी का एक नाम क्षमा है। दुर्गा को भी "**दुर्गा शिवा क्षमा**" कहा गया है, "**क्षमा तु श्रीमुखे काया योग-पट्टोत्तरीयका**"। क्षमा केवल वाणी से नहीं वरन् अन्तर्मन से होती है और वही सार्थक है। **एकादशी तत्त्वम्** में कहा है –

बाह्ये चाध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पादिते क्वचित्।
न कुप्यति न वहन्ति सा क्षमा परिकीर्तिता"।।

भगवान् महावीर उत्तराध्ययन सूत्र २९वें अध्य. में कहते हैं – **खन्तीएण "परीसहे जिणइ"** – क्षमा से समस्त परीषहों पर विजय प्राप्त होती है। इसी में २२-४५ में कहा गया है कि क्रोधादि कषायों का पूर्ण निग्रह, इंद्रियों को वश में करने से अनाचार से निवृत्त होना ही श्रामण्य है। राजमती का रथनेमि से यह उद्‌बोधन प्राणिमात्र के लिए सत्य है। भावपाहुड़ में धीर और धीर पुरूष का यही गुण बताया गया है, जिन्होंने चमकते हुए क्षमा खड्ग से उद्दण्ड कषाय रूपी योद्धाओं पर विजय प्राप्त कर ली है। मूलाचार के अनुसार –

जइ पंचिदिय दमओ होज्ज जणो रूसिदव्वय णियतो
तो कदरेण कयंतो रूसिज्ज जए मणूमाणं (२६६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांचों इन्द्रियों का दमन करके क्रोधादि से निवृत्त होने पर यमराज के क्रोध का कोई कारण शेष नहीं रहता।

जैन शास्त्रों में उत्तम क्षमा के लिए कहा गया है कि – क्रोध उत्पन्न होने के साक्षात् कारण होने पर भी जो रंच मात्र भी क्रोध न करे वही उत्तम क्षमा धर्म है। प्रत्येक स्थिति में परम समरसी भाव स्थिति में रहना ही उत्तम क्षमा है –

"वधे सत्य मूर्तस्य परब्रह्म रूपिणो ममापकार
हानिरिति परम समरसी भावस्थितिरुत्तमा क्षमा।"

जैन धर्म उत्तम क्षमा को सर्वाधिक महत्व देता है क्योंकि एक ओर यह अहिंसा व्रत का अचूक साधन है – सर्वात्म मैत्री भाव का – दूसरी ओर यह वीतराग भाव के उदय का भी है। उपवास करके तपस्या करने वाले निस्सन्देह महान् हैं पर उनका स्थान उनके अनन्तर है जो अपनी निन्दा, भर्त्सना और अपकार करने वाले को क्षमा कर देते हैं। क्षमा न तो दौर्बल्य है और न पलायन। वह मनुष्य की मानसिक शुचिता और सदाचारिता का प्रमाण है। **"सत्यपि सामर्थ्ये अपकार सहनं क्षमा"** – सामर्थ्य रहते हुए भी जो अपकार सहता है, वही क्षमा धर्म का पालन करता है। पुनः –

"क्षाम्यति क्षमोप्याशु प्रति कर्तुकृतागस।
कृतागसं तमिघन्ति क्षान्ति पीयूष संजुषः।"

विष का पान कर सत्त्वस्थ रहना ही शिवत्त्व है। शिव ने हलाहल का पान कर अपना प्रचार नहीं किया न गर्व, अपितु वे प्रसाद के शब्दों में –

नील गरल से भरा हुआ यह चन्द्र कपाल लिए हो,
इन्हीं नीमिलित ताराओं में कितनी शांति पिए हो।

यह शांति ही जीवन का अभिधेय है। शास्त्रों में प्रथम और द्वितीय क्षमा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है।

अकारणाद् प्रियवादिनो मिथ्या दृष्टिकारणेन मां त्रासयितु मुद्योगो विद्यते, अयं गतो मत्पुण्येनेति प्रथमा क्षमा। अकारणेन संत्रासकरस्य ताड़न वधादि परिणामोऽस्ति अयं चापगतोमत्सु-कृतेनेति द्वितीया क्षमा। अकारण अप्रिय भाषण करने वाले मिथ्या दृष्टि से अकारण त्रास देने का प्रयास वह मेरे पुण्य से दूर हुआ है; ऐसा विचार कर क्षमा करना प्रथम है। अकारण मुझे त्रास देने वाले को ताड़न और वध का परिणाम होता है, वह मेरे सुकृत से दूर हुआ – यह द्वितीय क्षमा है (**नियमासार तात्पर्यवृत्ति-११५**) **ठाणं** में धर्म के चार द्वारों में संतोष, सरलता और विनय में क्षमा ही प्रथम है। साधु को "क्षमा श्रमण" भी कहा जाता है, जिसके मन में उपशान्त भाव है, वही क्षमाशील है – **उवसमं खु सामण्णं"**। क्षमा ही आत्म विजय का साधन है। वह शुक्ल ध्यान का प्रथम अवलम्बन है। वाल्मीकि कहते हैं:

समुत्पतितं क्रोधं क्षमां चैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते।।

– जो हृदय में उत्पन्न क्रोध को क्षमा के द्वारा निकाल देता है वही पुरुष कहलाता है। महात्मा विदुर ने तो न जाने कितनी बार 'क्षमा' को प्रथम गुण गिनकर उसकी महत्ता प्रतिपादित की है : **क्षमया किं न साध्यते" – क्षमैका शान्तिरुत्तमा' अर्थादनर्थोऽक्षमो – यस्मै तस्मै नित्यं क्षमा हिता"। क्षमा हि परमं बलम्।** भगवान् महावीर का जीवन क्षमा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कितने परीषह व उपसर्ग आए पर उन्होंने क्षमा धर्म ही अपनाया। उनके समस्त साधना-वर्ष चुनौतियों में बीते। ग्वाला ने पीटा, यक्ष ने सताया, चण्डकोशिक ने डसा, अग्नि ताप में अडिग रहे, उन्हें गुप्तचर समझकर बंदी बनाया गया, कटपूतना व्यंतरी के प्रतिशोध की सीमा न रही – संगम देव ने कौन सा विघ्न नहीं डाला पर वे थे महावीर, जिन्होंने क्षमा धर्म नहीं छोड़ा। सबको आत्म भाव से क्षमा करते हुए केवल ज्ञान प्राप्त किया। क्षमा का ऐसा उदाहरण विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब हम आधुनिक मनोविज्ञान के संदर्भ में क्रोध का विवेचन करें। क्रोध पर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं। क्रोध के मनोवैज्ञानिक कारणों और स्वरूप का आधुनिक मनोविज्ञान ने विशद विश्लेषण और विवेचन किया है। यहां हम कुछ संदर्भों का ही उल्लेख करना चाहेंगे। इरिक बर्न ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि –

When Morlido (Death was lend) is awakened by danger, some people run away and some fight it. It has two emotions-fear and anger ? — He is afraid, he may slow down. The rate of heart depends — upon emotions. It is important and useful for an angry man to have a strong beating heart. Patient who complains of palpitation, it happens when one is angry. Even at night, the heart palpitates though he is unaware of the tension. This is also due to tension, though he may not know that he is angry but his heart knows it, (Ala, Man's guide to Pschiatry psychology (Papa 161-162) Any emotions desire or anger will cause functional changes (182).

यही कारण है कि हृदय रोग का एक कारण क्रोध है। विश्रुत हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. विलियम्स का कहना है कि हृदय पर क्रोध का विषम प्रभाव पड़ता है और अपने क्रोध को नियंत्रण न करने से हृदय-स्पन्दन के साथ-साथ अन्य रोग भी हो जाते हैं। एक सेनापति ने कहा कि यदि मुझे मारना हो तो क्रोध कराना। एक दिन सचमुच उसने अत्यधिक क्रोध किया और वह हृदय की असह्य पीड़ा से मर गया (बर्न का उदाहरण)। ईर्ष्या, वैमनस्य व असफल आकांक्षाएं क्रोध का कारण होते हैं। मनोविज्ञान में रियेलिटी प्रिंसिपल का विवेचन तनाव के अनियंत्रण होने में एवं असफलता के संदर्भ में किया गया है। इसे ही इड का तनाव कहा गया है। कोई व्यक्ति वर्षों तक अपने क्रोध को न पहचान पाये पर उसका चेतन और अचेतन तत्व इसे जानता है। **जेम्स रोलेड एंजल** ने क्रोध के मनोवैज्ञानिक कारणों पर विचार किया है – उसके अनुसार "उत्तेजना, चिढ़ाना, सामाजिक विसंगति, प्रतिरोध एवं अवमानना है। युद्ध भी एक प्रकार से सामूहिक क्रोध है। शैशव काल से ही जो निराशा उत्पन्न होती है, वही शनैः शनैः आक्रामक व्यक्तित्व का हेतु बनती है। उभय मुखता भी एक कारण है। मेंडोरा का बक्स खुलते ही जो व्याधियाँ फैली उनमें क्रोध की व्याधि भी थी। नोहा की कथा में विधाता ने मनुष्य को समाप्त करने की एक विधि क्रोध की भी कही। क्रोध से उत्पन्न अनेक आधि-व्याधियों का वर्णन चिकित्सकों ने किया है। मनोचिकित्सक ने इसके उपचार की विधि भी निर्धारित की है। जिस प्रकार **चरक** ने प्रज्ञापराध का एक घटक क्रोध कहा है। उसी प्रकार इन आधि-व्याधियों का विशद विवेचन **लियो मेडो** ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **'एंगर'** में किया है। इवो के छिदरबिन्ड ने अपने ग्रन्थ **'एंगर, विडेन्स एंड पोलाइटिज'** में बताया है कि विश्व की अशांति में भी हिंसा एवं राजनीति के दुष्प्रभाव का हेतु क्रोध रहता है। यह कहा गया है कि सामाजिक हिंसा को रोकने के लिए व्यक्ति की हिंसक प्रवृत्ति को रोकना पड़ेगा।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मेकड्गल ने क्रोध के मनोभाव और मनोविकार का वर्णन किया है। वह कहता है कि

Anger at the stupidity of others might also be quoted as an instance not comfortable to the law but it is only that the normal man is angered by it.

सोमन साइकोलोजी – पृ.५१)। पुनः कहा गया है –

In the matters of offences against the person, individual anger remains as a latent threat whose influence is by no means negligible in the regulation of manners (page 250)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी ग्रंथ में आगे कहा है –

We speak of hate and hatred yet hatred is also the general name of all sentiments in the structure of which the affective dispositions of angers and fear are incorporated (page 436)

जिस प्रकार धर्म और अध्यात्म में क्रोध के दमन और हनन पर विचार किया गया है उसी प्रकार मनोविज्ञान और समाज शास्त्रियों ने भी। **इरिक बर्न** कहता है –

Man must apply destructive energy to certain goals spiritual progress. Fear and anger must he inwardly directed.

पेज के अनुसार आत्म निरीक्षण करके क्रोध का दमन करना उचित है। इसे ही क्रोध पर क्रोध करना कहा है। इसके साथ ही विवेक और औचित्य से क्रोध के कारणों का विश्लेषण करने से क्रोध पर नियंत्रण किया जा सकता है। सचेतन, सक्रियता और सर्जनात्मक वृत्ति भी क्रोध समाप्त करती है। कलात्मक सृजन और स्वाध्याय भी क्रोध को शान्त करते हैं। सामाजिक व्यवहार और आचरण की शुद्धता एवं आत्म विश्वास के साथ मैत्री भाव भी क्रोध के उपचार हैं। मेकगुडल के अनुसार

—Tender feeling is purely self-seeking as any other pleasure." "From the emotions and the impulse to cherish and protect-spring generosity gratitude, love and pity — true benevolence and altrensic conducting every kind. *(वही पृ. ६१)*

मनोशास्त्रियों की सम्मति में क्रोध व हिंसा भावना की जड़ें मनुष्य के आदिम मस्तिष्क में विद्यमान रहती है। डॉ. एम.आर.डेलगाडे ने यह प्रमाणित कर दिया है। उन्होंने मस्तिष्क के विशेष बिन्दु को उत्तेजित कर शान्त मनःस्थिति को भी उग्र बना दिया। ये प्रयोग उन्होंने बन्दरों व सांडों पर किए। डॉ. मार्क ने जानवरों से भिन्न मानवीय मस्तिष्क के उस आदिम हिस्से पर प्रकाश डाला है। जिसके कारण वह अपनी भावनाओं, संवेदनाओं और स्थितियों पर नियंत्रण खो देता है। इन प्रयोगों के अतिरिक्त अनेक मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियों द्वारा क्रोध के मनोविकार का निरूपण किया है। कुछेक उल्लेख पर्याप्त होंगे।

डॉ. जेम्स रोलेण्ड एनगिल ने शैशव काल से ही क्रोध की उत्पत्ति के कारणों का संधान किया है – जिनमें चिड़चिड़ाहट, चिढ़ाना, मनोमालिन्य, अपमान आदि मुख्य हैं, ये ही वे हेतु हैं, जो मानवीय मस्तिष्क को असंतुलित करते हैं। वस्तुतः युद्धलिप्सा भी एक सामूहिक क्रोधाभिव्यक्ति है, व्यक्ति या समाज अथवा राष्ट्र अपनी अस्मिता के खण्डित होने पर युद्ध, धर्मान्धता, स्वार्थ, अधिकार व सत्ता की एषणा से युद्धोन्मत्त हो जाते हैं। प्राचीन काल से ही ये उदाहरण इतिहास में उपलब्ध हैं – यूनान के निवासियों ने इब्रानियों को अपना शिकार बनाया, रोम के निवासियों ने ईसाईयों पर पाशविक अत्याचार किए। मध्ययुग की क्रुसेड युद्ध – धर्मान्धता के प्रमाण थे। भारत में चंगेज खां, मोहम्मद गोरी, तैमूर खाँ, नादिरशाह आदि आक्रामकों ने धर्म-विरोध व सत्ता के मद में कत्लेआम किया। आधुनिक युग में हिटलर ने लाखों यहूदियों को मौत के घाट उतारा। यहूदियों का देवता भी प्रतिशोध का देवता है। आज विद्वान् कहते हैं कि कोलम्बस भी अत्यधिक उग्र और क्रोधी था – हिटलर तो उसके समक्ष बौना लगता है। राष्ट्र और समाज की यह उग्रता और आक्रामक प्रवृत्ति सामूहिक होते हुए भी, मूलतः व्यक्तिपरक है। डॉ. लियो मेडो ने इस पर विशेष प्रकाश डाला है।

डॉ. मेडो ने अपने **ग्रंथ "क्रोध"** (एंगर) में यह बताया है कि मनुष्य का इतिहास एक दृष्टि से क्रोध का इतिहास है। **इंजील** में यह प्रतदिपादित किया गया है कि मनुष्य की सृष्टि के उपरान्त ही क्रोध की उत्पत्ति हुई। प्रलय में नोहा की कल्प कथा में ईश्वर ने मनुष्य को ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाप्त करना चाहा। आदम और इव के दोनों पुत्रों ने क्रोध के कारण एक-दूसरे का वध कर दिया। यहीं प्रश्न उठता है कि क्रोध होता क्यों है ? डॉ.मिडो इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं। प्रथम कारण है – नैराश्य, विफलता, महत्वाकांक्षा, स्वाग्रह, परिवेश के साथ असंतुलन, स्वपीड़न व परपीड़न आकांक्षा। व्यक्ति की विकृत कामवासना भी क्रोध का एक कारण है।

क्रोध का परिणाम अत्यन्त घातक होता है। डॉ. मिडो का कथन है कि मनुष्य के लिए यह सर्वाधिक घातक संवेग है। मनुष्य की स्नायविक प्रक्रिया सहानुकम्पी (पेरासिम्पथेटिक) व अनुकम्पी (सिम्पेथेटिक) नाड़ियों पर निर्भर करती है। सहानुकम्पी दैनिक कार्य-कलापों का संचालन करती है। मनुष्य की पाचन क्रिया, स्वास्थ्य लाभ आदि इससे होते हैं। अनुकम्पी नाड़ियों की आवश्यकता आपात्कालीन स्थिति में सहायक होती है। सहानुकम्पी शांति का सूचक है और अनुकम्पी उत्तेजक स्थिति का। उत्तेजना की स्थिति में हृदय पर भार पड़ता है, रक्तचाप बढ़ जाता है, शर्करा का अधिक प्रयोग होता है। अधिवृक्क (ऐडरीनल) ग्रंथि से स्राव भी अधिक होने लगता है। क्रोध की अवस्था में यही दैहिक क्रिया है। इसका दुःखद परिणाम है शिरःशूल, तनाव, अधिक रक्त चाप, गठिया, हृदयरोग, मानसिक असंतुलन, मधुमेह, श्वास प्रक्रिया की तीव्रता, आमाशय शोथ, आदि। कभी – कभी जब आक्रामक प्रवृत्ति अनियंत्रित होकर गहन अवसाद में परिणत हो जाती है, तब व्यक्ति आत्महत्या भी कर लेता है।

मनुष्य के भीतर एक सृजनात्मक वृत्ति होती है और दूसरी ध्वंसात्मक। एरिक वर्न का अभिमत है कि मनुष्य को अपनी ध्वंसात्मक वृत्ति समाप्त कर लेने के लिए कुछ निश्चित उद्देश्य निर्धारित करना चाहिए। इनमें आध्यात्मिक उन्नति ही मुख्य है। हम आगे चलकर देखेंगे कि "प्रेक्षा ध्यान" किस प्रकार मानसिक संतुलन के साथ मनुष्य की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति को भी समाप्त करने में सहायक होता है। वर्न कहता है कि भय व क्रोध का हनन करने के लिए व्यक्ति को अपनी सारी ऊर्जा का आभ्यंतरीकरण करना चाहिए। व्यक्ति चाहे यह न जाने कि वह क्रोधित है, पर उसका दृश्य इसे जानता है। क्रोध का घातक परिणाम सारे शरीर पर पड़ता है। डॉ. विलियम्स का मत है कि दिल का दौरा क्रोध के कारण ही अधिक होता है – वैमनस्य और क्रोध ही इसके हेतु हैं। एक अन्य विद्वान् **इवो के फियराबेंड** कहते हैं कि क्रोध व आततायीपन का निषेध कर व्यक्ति को अपनी अस्मिता की खोज से बृहत् मानवीय मूल्यों का संचार करना चाहिए। इसी प्रकार एक अन्य विद्वान का मत है कि **मनुष्य का शंकालु-स्वभाव, अविश्वास, असंयम, मानसिक विक्षेप और क्रोध, उसकी व्यावहारिकता नष्ट कर एक ऐसा प्रतिशोध उपस्थित करते हैं, जिससे अन्ततः हतप्रभ होकर वह अपने से और समाज से ही टूट जाता है।**

अब हम प्रसिद्ध **मनोशास्त्री डॉ. एलबर्ट ऐलिस** का अभिमत भी देखें। डॉ. एलिस ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **"हाउ टू लिव विद एंड विदाउट एंगर"** में क्रोध पर अत्यन्त वैज्ञानिक व विवेकपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं। उनका मत है कि क्रोध मानव जीवन में सर्वाधिक अपकारक व निरर्थक है। उन्होंने उन विद्वानों का सतर्क उत्तर दिया है जो यह मानते हैं कि क्रोध अपनी सीमित परिधि में, एक ऐसा कवच है, जो आक्रामक व आततायी समाज से व्यक्ति की रक्षा कर उसके "अहं" का बचाव करता है। इस भ्रांत धारणा का विरोध करते हुए डॉ. एलिस ने यह प्रतिपादित किया है कि क्रोध व्यक्ति के व्यक्तित्व का खण्डन कर उसे विषयगामी बनाता है। वह आगे कहता है कि क्रोधी स्वभाव वाले व्यक्ति से सभी दूर रहकर उसकी अवहेलना करते हैं। डॉ. एलिसन क्रोध के उपचारार्थ नवीन और लोकप्रिय पद्धति **"रेशनल इमोटिव थिरेपी"**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलित की है। यह पद्धति मनुष्य की बौद्धिकता को परिष्करण कर उसके संवेगों का उदात्तीकरण करती है। **क्रोध का सामान्य उपचार और उससे निवृत्ति निम्नलिखित उपायों से संभव है – (१) क्रोध की आत्म स्वीकृति, आत्म – संलाप व निरीक्षण, (२) उसके कारणों का विवेकपूर्ण वस्तुनिष्ठ विश्लेषण, (३) रचनात्मक वृत्ति से पारस्परिक संप्रेषणीयता द्वारा यथार्थबोध (४) अन्तर्दर्शन (५) बाह्य नीति (६) एग्रनोफोबिया से मुक्ति आदि**। वाल्मीकि रामायण में हनुमान लंका दाह पर प्रायश्चित करते हुए कहते हैं – यह मैंने क्या किया, क्रोधावेश में लंका जला डाली। उनका कथन है –

"धन्याः खलु महात्मानः ये बुद्धया कोप मुत्थितम्।
निरुन्धन्ति .... दीप्तमग्निमिवाम्भसा।।"

प्रेक्षाध्यान-साधना एक ऐसी सिद्ध पद्धति और प्रक्रिया है, जो मनुष्य की आंतरिक शक्ति का विवेकीकरण व उदात्तीकरण कर उसे आत्मसाक्षात्कार व आत्म दर्शन कराती है। प्रज्ञा के जागरण का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन है – समता और अनेकान्त दृष्टि, प्रभा का सतत चैतन्य। इन्द्रियातीत चैतन्य; उसका विकास, जिसका सुखद परिणाम है – संयम, समता और शांति, अर्थात् सर्वतोभावेन क्षमा भाव। युवाचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि – "अशेष, की अनुभूति ममत्व और तनाव का विसर्जन है" – क्रोध का आवश्यक फल है – विकृत अहं और तनाव। आज विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मानव जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। ये संस्कार कम से कम पांच पीढ़ी तक चलते रहते हैं, हेय संस्कारों का शुद्धिकरण जीवन को उच्च भाव और ऊर्ध्व मार्ग पर अग्रसर करता है। संस्कार की शुद्धि वस्तुतः आत्म शुद्धि है – **"आत्मशुद्धि साधनं धर्मः"**। जिस क्षण मन में राग, द्वेष, घृणा, जुगुप्सा, क्रोधादि कषाय उत्पन्न हो, तब अप्रमत्त भाव से उनका निषेध और निराकरण आत्मशुद्धि का हेतु बनता है। प्रसिद्ध विद्वान् अब्राहम ओसलो ने मानव चेतना के जिन ६ स्तरों का विवेचन किया हैं, उसकी अंतिम स्थिति "आत्म साक्षात्कार" में है। आत्म साक्षात्कार की यह भूमिका मनुष्य के सामाजिक आचार और मूल्यों पर आधृत है। इन मूल्यों के लिए भी संस्कारों का शुद्धिकरण अनिवार्य है। आज व्यक्ति और समाज भय और चिंता से आक्रांत है। प्रसिद्ध **मनोशास्त्री कर्ट राइडर** कहता है कि सम्पूर्ण विश्व एक सार्वभौम नियम व व्यवस्था से बंधा है – इस नियम और व्यवस्था का अतिक्रमण करके व्यक्ति और समाज दोनों भय, आतंक व चिन्ता से ग्रस्त होते हैं। यह अतिक्रमण ज्ञात और अज्ञात दोनों कारणों से होता है। यदि वह इस सार्वभौम व्यवस्था का पालन करे तो अभय है और निरातंक होकर चिंता से मुक्त हो जाएगा। क्रोध रहित जीवन इसका एक हेतु है। वशिष्ठ जी राम से कहते हैं – **अभयं वैब्रह्मामैर्षा** – अभय रहो और अभय रखो।

जैन साधना पद्धति में आभ्यंतर तप के अन्तर्गत प्रायश्चित, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग का विवेचन कषाय विजय का अमोघ अस्त्र है। आधुनिक मनोरोग चिकित्सा में भी ध्यान को अत्यन्त महत्वपूर्ण गिना है। **बायोएथिक्स** और **बायो फीड बेक** प्रणाली ध्यान की क्षमता को उजागर करती है। मनोविज्ञान की अवधारणा चारित्रिक शुद्धता के साधन हैं – **कहु एवं अविषाणाओं बितिया बाचतन मंया"**। गलती करके उसे स्वीकार न करना दुगुनी मूर्खता है। निशीथ चूर्णि" में आत्मालोचन और प्रायश्चित से चरित्र शुद्धि, आत्म शुद्धि, संयम, ऋजुता, मृदुता, आदि का विकास माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार प्रायश्चित से व्यक्ति सभी संवेगों से मुक्त होता है। जैन धर्म में कायोत्सर्ग का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। क्रोध की स्थिति में जो मानसिक और शारीरिक उग्रता व तनाव होता है उसका उपचार है – कायोत्सर्ग, जिससे स्थिरता और जागरूकता के साथ साथ शुद्ध चैतन्य की अनुभूति होती है। "भाव विशुद्धि, मानसिक एकाग्रता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्दर्शन व विवेकीकरण की यही आधार भूमि है। विवेक-विचार, उचित-अनुचित का ज्ञान सदाचार के लिए अनिवार्य है। आचारांग में महावीर बार-बार विवेक सहित संयम में रत हो जीवन पथ पर चलने का उपदेश देते हैं।

साहिस्सामो नाणं वीराणं
समियाणं सहियाणं सया
जयाणं संघडदंसिणं आतोवरयाणं
अहा तहा लोयं समुवेहमाणाणं।।

जो वीर है, क्रियाओं में संयत हैं, विवेकी हैं, सदैव यत्नवान हैं, दृढ़दर्शी व पाप कर्म से निवृत्त हैं और लोक को यथार्थ रूप में देखते हैं – ज्ञान और अनुभवपूर्ण तत्त्वदर्शी को उपाधि नहीं होती। शुक्ल ध्यान के चार लक्षणों में विवेक तीसरा लक्षण है। जैन सिद्धान्तों के अनुसार इन्द्रिय विषयों और कषायों का निग्रह कर ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा जो आत्म-दर्शन करता है – उसी को तप धर्म होता है। असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति।क्रोध के परिहार के लिए जैन धर्म ज्ञान, ध्यान और तप पर बल देता है। ...ज्ञान, ध्यान और तप का विपुल विवेचन जैनागमों में उपलब्ध है। जैन शिक्षा पद्धति जीवन निर्माण का नियामक और धारक तत्व है। शिक्षा सूत्र के अनुसार पांच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती। शिक्षा के लिए ८ आवश्यक उपायों में सत्यरत रहना, अक्रोधी होना, अशील न होना, विशील न होना और इन्द्रिय और मनोविजय मुख्य है। इस सूत्र में भावों के सद्भाव के निरूपण में जो श्रद्धा को सम्यक्त्व कहा गया है, जिसके दस भेद उल्लिखित हैं। इन सबके साथ जैन साधना की परम उत्कृष्ट पद्धति है – सामायिक। सामायिक का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है "समय" अर्थात् आत्मा के निकट पहुँचना। बाह्य प्रभावों से मुक्त होकर अतल आंतरिक क्षमता और शक्ति प्राप्त करना। यह सामायिक महत्व का अकाट्य प्रमाण है।

"समभावो सामइयं तण-कंचण – सत्तुमित्तविसओति"

तृण और स्वर्ण में, शत्रु और मित्र में समभाव ही सामायिक है। अर्थात् सर्वभूतों के प्रति समभाव। 'षडावश्यक' में सामायिक का प्रथम स्थान है। एकीभाव द्वारा बाह्य परिणति से आत्माभिमुख होना सामायिक है। सामायिक समत्व है (अर्थात् रागद्वेष से परे, मानसिक स्थैर्य और अनुकूल-प्रतिकूल में मध्यस्थ भाव रखना।) संयम, नियम, तप में संलग्न रहना ही सामायिक है। जब वैर घृणा, द्वेष, विरोध आक्रामक वृत्ति ही नहीं रहेगी, तब कहां से आएगा क्रोध कषाय। उत्तराध्ययन (२४-८) में सामायिक के प्रश्न पर – **"सामाइएणं भंते, जीवे किं जणयइ।"** उत्तर में वीर प्रभु कहते हैं **"सामाइएणं सावज्ज जोग-विरइं जणयइ"** समस्त प्राणियों के प्रति समभाव, शत्रु-मित्र, दुःख-सुख, लाभ-अलाभ, निन्दा-प्रशंसा, संयोग-वियोग, मानापमान में राग-द्वेष, का अभाव सामायिक समता की साधना है। समभाव में स्थिर होना ही सामायिक है। गीता में **"समत्वं योग उच्यते"** से भी यही तात्पर्य है। जो अपनी आत्मा को ज्ञान आदि के समीप पहुँचा दे। वही सामायिक है। (सूत्रकृताङ्ग १-२)। ज्ञान, संयम, तप इनसे जीव का जो प्रशस्त समभाव है – वही सामायिक है **(दृष्टव्य मूलाचार, नियमसार)**।

मनोविज्ञान ने जहां क्रोध का उपचार बताया है यहाँ जैन – विज्ञान उपचार और परिहार के साथ-साथ उसके रूपान्तरण और आन्तरिक क्रियाशीलता के द्वारा व्यक्तित्व के सम्यक् विकास का निरूपण भी किया है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र का परमोत्कर्ष ही इस रूपान्तरण और क्रियाशीलता का लक्ष्य है। ज्ञान से पदार्थों का ज्ञान, दर्शन से श्रद्धा और चारित्र से कर्मास्रव का निरोध होता है। तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। चारित्र के बिना ज्ञान व दर्शन के बिना चारित्र कुछ भी अर्थ नहीं रखते। बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त होना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। धर्म, दर्शन और अध्यात्म के साथ जैन मनोविज्ञान अनुपम और अनन्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज विश्व में चारों ओर नयी नैतिकता की मांग हो रही है। विज्ञान और तकनीकी युग की भौतिक विभीषिका से वैज्ञानिक ही संत्रस्त हैं। एक आवाज गूँज रही है – भारतीय पथ(दि इंडियन वे) को अपनाने की। मनुष्य की आंतरिक शक्ति को उभार कर नए आयाम देने की, मानवीय आचार संहिता को सेवा, त्याग, समता और संयम के साथ व्यक्ति और समाज के व्यापक संतुलन और सामञ्जस्य की। विज्ञान पंगु होकर अध्यात्म और दर्शन का संबल खोज रहा है। बौद्धिक ऊहापोह ने हमारी भावनात्मक क्रियाशीलता विकृत कर दी है। आचार्य विनोबा भावे के शब्दों में – स्वार्थ, सत्ता और सम्पत्ति ही जीवन का लक्ष्य है। कुछ ऐसे चिन्तक भी हैं जो पाशविकता, आक्रामक भावना, प्रतिशोध और सत्तास्वार्थ को आवश्यक बता रहे हैं – उदाहरणार्थ – "नेकेड एव", दि टेटिटोरियल इम्पेरिटिव आदि ग्रंथ। आज प्रत्येक पन्द्रह वर्ष में मनुष्य की बुद्धि (ज्ञान नहीं) दुगुनी हो रही है, उसके बोझ से वह स्वयं घबरा उठा है। नियमन और नियंत्रण का नितान्त अभाव है। अर्थवत्ता और गुणवत्ता ऐषणाओं और कषायों में धूमिल हो गयी, तब मुक्ति का एक ही पथ है, वह है- जैन धर्म की मूल भूत मानवीय नैतिकता का। बरतानिया के एक सर्वेक्षण में बाताया गया है कि १८ और २५ वर्ष की आयु के अधिकांश युवा (विद्यार्थी) अपच, क्रोध, वैफल्य, विभिन्न आधि-व्याधि के साथ-साथ जिजीविषा खो बैठे हैं, उन्हें न घर सुहाता है और न बाहर। वे पूर्णतः निस्संग और एकाकी हैं – असामान्य व असंतुलित। माता-पिता और भाई-बहिन के प्रति उन्हें न प्रेम है और न लगाव। इस ग्लानि का उपचार, इन कषायों का अंत इस जिजीविषा से मुक्ति और दिशाहीनता में मार्ग प्रशस्त करने के लिए धर्म ही एकमात्र संबल है। बनार्ड शॉ ने भी अपने संस्मरण में यही कहा है – धर्म ही हमें भय और दुश्चिंताओं से मुक्त करेगा। जैन शासन इसका समर्थ और सबल आलोक है।

रवीन्द्रनाथ की एक कविता आराध्य के प्रति है, जिसमें आज के मनुष्य की मूढ़ता व गतिशीलता का ज्वलंत चित्रण है –

तुमि जतो मार दिये छो से मार
करिया दिये छो सोझा
आमि जतो मार तुलेछि
सकलइ होयेछे बोझा
ए बोझा आमार नामाओ बंधु, नामाओ,
भारेर वेगेति टेलिया चलेछि
एइ यात्रा आमार थामाओ, बंधु थामाओ!

❖ ❖ ❖

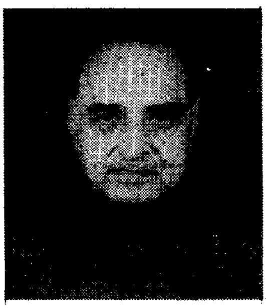

❑ डॉ. श्री कल्याणमल जी लोढ़ा का जन्म २१ सितम्बर सन् १६२१ में हुआ। आगरा एवं प्रयाग विश्वविद्यालयों से एम.ए., पी.एच.डी. करके १६४८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बने। २० वर्ष तक हिन्दी विभागाध्यक्ष भी रहे। विश्वविद्यालयीय अनेक समितियों के सदस्य एवं डायरेक्टर श्री लोढ़ा को जोधपुर विश्वविद्यालय का उप कुलपति चुना गया। हिन्दी के श्रेष्ठ लेखक एवं व्याख्याता। अनेक ग्रन्थों एवं शोधपत्रों के प्रणेता श्री लोढ़ा ने अनेक पुरस्कार अर्जित किये। जैन विद्या के लेखक, चिंतक एवं गवेषक !

– सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org